डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने कहा है—"समाज में अध्यापक का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को बौद्धिक एवं तकनीकी कुशलताओं को हस्तान्तरण करने का केन्द्र है और सभ्यता के प्रकाश को प्रज्जवलित रखने में सहायता देता है।"

भारतीय संविधान में प्रदत्त समता, स्वतन्त्रता, सामाजिक न्याय एवं व्यक्ति की गरिमा (Dignity of Person) आदि मूल्य लोकतांत्रिक समाज की स्थापना पर बल देते हैं। हमारे संविधान में भी जाति, वर्ग, धर्म, आयु एवं लैंगिक आधार पर किसी भी प्रकार के विभेद का निषेध किया गया है। इस प्रकार हमारा यह संविधान भी एक समावेशी समाज की संकल्पना को प्रस्तुत करता है, जिसके परिप्रेक्ष्य में बच्चे को सामाजिक, जातिगत, आर्थिक, वर्गीय, लैंगिक, शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से भिन्न देखे जाने की बजाय एक स्वतन्त्र अधिगमकर्त्ता के रूप में देखे जाने की आवश्यकता है। शिक्षा चूँकि समावेशन व सार्वभौमीकरण का सबसे महत्त्वपूर्ण औजार है, अतः इसके माध्यम से सार्वभौमिक व समावेशी शिक्षा की संकल्पना को साकार किया जा सकता है तथा समावेशन में बाधक तत्त्वों से भी निपटा जा सकता है।

सार्वभौमिक शिक्षा की आवश्यकता की पृष्ठभूमि
(BACKGROUND OF NEED OF UNIVERSAL EDUCATION)

संयुक्त राष्ट्र संघ के पूर्व महासचिव **कोफी अन्नान** ने कहा था—"मानव इतिहास में बीसवीं सदी सबसे खूनी तथा हिंसा की सदी रही है। इस सदी में मानव जाति के समूल विनाश की हद तक जाकर प्रथम तथा द्वितीय विश्व युद्ध लड़े गये। जर्मनी तथा फ्रांस के बीच विवाद ही प्रथम तथा द्वितीय विश्वयुद्ध का कारण बना। बीसवीं सदी में अन्य राष्ट्रों के बीच भी अनेक युद्ध लड़े गये। जापान के हिरोशिमा तथा नागासाकी में अमेरिका द्वारा गिराये गये परमाणु बम का महाविनाश, प्रथम तथा द्वितीय खाड़ी युद्ध, दक्षिण कोरिया तथा उत्तरी कोरिया के बीच युद्ध, इजराइल, फिलीपीन्स के बीच युद्ध, ईरान-इराक के बीच युद्ध हुआ। भारत-पाकिस्तान के बीच तीन बार युद्ध हुए। भारत-चीन के बीच युद्ध हुआ। बीसवीं सदी में हुए इन सभी युद्धों में करोड़ों लोग मारे गये। युद्धों में अपार धनराशि व्यय हो रही है। आज हर देश दूसरे देश से अपनी सुरक्षा के नाम पर अपना रक्षा बजट प्रतिवर्ष बढ़ा रहा है। गरीब देश भी शस्त्रों की होड़ में शामिल है। मानव जाति को मिलकर सोचना चाहिए कि आखिर इन युद्धों से हमें मिलता क्या है ? इन युद्धों से सबसे ज्यादा नुकसान छोटे-छोटे बच्चों एवं महिलाओं को होता है।

बीसवीं सदी में विश्व भर में युद्धों की विनाशलीला संकुचित राष्ट्रीयता के कारण हुई है, जिसके लिए सबसे अधिक दोषी हमारी शिक्षा है। विश्व के सभी देशों के स्कूल अपने-अपने देश के बच्चों को

Scanned with CamScanner

अपने देश से प्रेम करने की शिक्षा तो देते हैं, लेकिन सारे विश्व से प्रेम करना नहीं सिखाते हैं। यदि विश्व सुरक्षित रहेगा तभी इसके देश सुरक्षित रहेंगे। विश्व के बदलते हुए परिदृश्य को देखने से ज्ञात होता है कि 21वीं सदी की शिक्षा का स्वरूप बीसवीं सदी की शिक्षा से भिन्न होना चाहिए। 21वीं सदी की शिक्षा उद्देश्यपूर्ण होनी चाहिए, जिससे सारी मानव जाति से प्रेम करने वाले विश्व नागरिक विकसित हों। इसलिए 21वीं सदी की शिक्षा का उद्देश्य प्रत्येक बालक के दृष्टिकोण को संकुचित राष्ट्रीयता से विकसित करके विश्वव्यापी बनाना होना चाहिए।

मनुष्य को विचारवान बनाने की श्रेष्ठ अवस्था बचपन है। इसलिए संसार के प्रत्येक बालक को विश्व एकता एवं विश्व-शान्ति की शिक्षा बचपन से ही अनिवार्य रूप से दी जानी चाहिए। मानव इतिहास में वह क्षण आ गया है कि जब शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन लाने का सशक्त माध्यम बनकर विश्वभर में हो रही उथल-पुथल का समाधान विश्व एकता तथा विश्व-शान्ति की शिक्षा द्वारा प्रस्तुत करना चाहिए। नोबेल पुरस्कार विजेता महान अर्थशास्त्री **टिनबेरजेन** के ये विचार बरबस हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं—"राष्ट्रीय सरकारें विश्व के समक्ष उपस्थित संकटों का हल अधिक समय तक नहीं कर पायेंगी। इन समस्याओं के समाधान के लिए विश्व सरकार की आवश्यकता है।" **महात्मा गाँधी** ने कहा था कि यदि हम विश्व से युद्धों को समाप्त करना चाहते हैं तो इसकी शुरुआत हमें बच्चों से करनी होगी। चूँकि युद्ध के विचार मानव मस्तिष्क में पैदा होते हैं। इसलिए हमें मानव मस्तिष्क में ही शान्ति के विचार डालने होंगे।

सार्वभौमिक अर्थात् विश्व एकता की शिक्षा आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है। यदि विश्व के सभी लोग अपने आपसी मतभेदों को एक-एक करके कम करें तथा एकता व शान्ति के आदर्शों के अन्तर्गत एकताबद्ध हो जायें तो विश्वव्यापी आतंकवाद ही नहीं वरन् अशिक्षा, गरीबी, भुखमरी तथा पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं का समाधान हो सकता है। गिनीज बुक ऑफ रिकॉर्ड और यूनेस्को शान्ति शिक्षा पुरस्कार से सम्मानित सिटी मॉण्टेसरी स्कूल ने अपना नैतिक उत्तरदायित्व समझते हुए विश्व के दो अरब बच्चों तथा आगे आने वाली पीढ़ियों के सुरक्षित भविष्य के लिए विगत 54 वर्षों से प्रयासरत है। सिटी मॉण्टेसरी स्कूल का मानना है कि विश्व एकता तथा विश्व-शान्ति की शिक्षा ही इस युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है। यदि एक बालक को भौतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक तीनों प्रकार की शिक्षाओं का सन्तुलित ज्ञान मिल जाये तो वह संसार का सबसे शक्तिशाली व्यक्ति बन सकता है। आज उद्देश्यपूर्ण शिक्षा द्वारा सारी दुनिया को बदलने के लिए सार्वभौमिक शिक्षा की आवश्यकता है।

अन्ततः वर्तमान में 'सार्वभौमिक शिक्षा' का सम्प्रत्यय हमारे प्राचीन **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की अवधारणा का ही दूसरा रूप है, जिसके द्वारा बाल्यावस्था से ही बच्चों को विद्यालय, परिवार तथा समाज के द्वारा यह विचार देना चाहिए कि ईश्वर एक है, सभी धर्म एक हैं तथा सम्पूर्ण मानव जाति एक है, सभी प्रकार के पूर्वाग्रह दूर हों, व्यक्ति स्वयं सत्य की खोज करे, एक सहायक विश्व भाषा हो, नारी तथा पुरुष समान हों, विश्व की शिक्षा का स्वरूप एक हो, विज्ञान व धर्म में समन्वय हो, विश्व की एक अर्थव्यवस्था हो, एक प्रभावी विश्व न्यायालय का गठन हो, प्रभावी अन्तर्राष्ट्रीय कानून बनाने वाली विश्व संसद हो, विश्व की एक राजनीतिक व्यवस्था हो, एक भाषा, एक मुद्रा हो। विश्व सरकार बने तथा संस्कृतियों की विविधता की रक्षा हो। इस प्रकार एक न्यायपूर्ण विश्व व्यवस्था बनाकर निकट भविष्य में सारी वसुधा को कुटुम्ब बनाने की परिकल्पना **सार्वभौमिक शिक्षा** द्वारा साकार हो सकती है तथा शिक्षक इसमें अपनी महती भूमिका निभा सकता है।

परन्तु सबसे पहले शिक्षक को स्वयं इन गुणों से युक्त होना होगा। शिक्षक का हृदय विशाल हो, क्योंकि व्यापक दृष्टिकोण को अपनाने वाला शिक्षक ही बालकों में इस बात को आसानी से अंकित कर सकता है कि वर्ण, जाति तथा धर्म आदि मानव को मानव से पृथक् नहीं कर सकते, अपितु ये तो केवल

Scanned with CamScanner

उसकी निजी भावनायें ही हैं जो इसको एक-दूसरे से अलग कर सकती हैं। वह बालकों के हाथ में ऐ भावना को भी भर सकता है कि संसार एक इकाई है तथा उसका राष्ट्र इस इकाई का एक भाग है। ऐ स्थिति में यदि कोई राष्ट्र प्रगतिशील राष्ट्रों के साथ-साथ उन्नति नहीं कर रहा है तो यह भयंकर समस्य हो सकती है। मानव का कल्याण तो इसी में है कि संसार के सभी निवासी आपस में प्रेम व सहयोग साथ भाई-भाई की तरह रहें। यही नहीं, शिक्षक बालकों को भी यह बात आसानी से बता सकता है कि संस्कृति किसी अमुक व्यक्ति अथवा समूह की निजी सम्पत्ति नहीं है, अपितु विभिन्न जातियों या राष्ट्रों सामूहिक प्रयासों का फल है। **सार्वभौमिक शिक्षा** देते समय शिक्षक केवल पाठ-विषयों के प्रस्तुत क तक ही सीमित नहीं रह सकता, अपितु वह अन्तर्राष्ट्रीय त्योहारों, जयन्तियों, अन्तर्राष्ट्रीय मेलों, सप्ताह नाटकों तथा उत्सवों एवं अन्तर्राष्ट्रीय बातों पर वाद-विवाद आदि पाठ्यान्तर क्रियाओं के द्वारा भी उ अन्तर्राष्ट्रीय भाईचारे की भावना का समावेश कर सकता है।

भारत में सार्वभौमिक शिक्षा हेतु चुनौतियाँ
(CHALLENGES FOR UNIVERSAL EDUCATION IN INDIA)

आज भारत में जिस सार्वभौमिक शिक्षा की बात की जा रही है वह शिक्षा आजाद भारत में भारती संविधान के नीति निर्देशक तत्वों, जैसे—सामाजिक न्याय, समता और समानता के अवसर जैसे—शब्द के आवरण में सिमटकर चल रही थी जिसमें भारत के पहले शिक्षा मन्त्री के रूप में कार्य करने वा मौलाना अबुल कलाम आजाद का बहुत योगदान है जिन्होंने गाँधीवादी विचारों के अनुरूप भारती शिक्षा व्यवस्था में भारतीय संस्कृति की उपस्थिति को, शिक्षा की समतापूर्ण सर्वसुलभता को और शिक्षा जनतन्त्रीकरण को बढ़ावा दिया। परन्तु शिक्षा पर राजनीतिक नियन्त्रण ने गाँधी और मौलाना आजाद विचारों को प्रयासों को ज्यादा दिनों तक फलीभूत नहीं होने दिया। बाद में डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, डॉ सम्पूर्णानन्द, डॉ. दौलत सिंह कोठारी, डॉ. लक्ष्मणस्वामी मुदालियर, आचार्य राममूर्ति आदि शिक्षाविदों संयोजन में अनेक समितियों और आयोगों ने सार्वभौमिक शिक्षा के पक्ष में कई अनुशंसाएँ की जो उपयो तो साबित हुए किन्तु शिक्षा के विशुद्ध भारतीय स्वरूप को शेष रख पाने में सफल नहीं हो सकती। फलत शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य भौतिक संसाधनों को उपलब्ध कर पाने व व्यक्तिगत स्वार्थ को पूर्ण कर पा की चेष्टाओं में निहित हो गया तथा नब्बे के दशक में आए आर्थिक उदारीकरण, विनिवेश विश्व व्यापीकरण और बहुराष्ट्रीयकरण के कारण भारतीय समाज में और सत्य है। भारतीय शिक्षा व्यवस्था समक्ष चुनौतियाँ नजर आने लगी।

इक्कीसवीं सदी की शुरुआत ही बहुराष्ट्रीयकरण आर्थिक उदारीकरण व इनके कारण आई सूचना-संचार क्रान्ति के व्यापक प्रभावों को लेकर हुई तथा इस शिक्षा व्यवस्था के महत्वपूर्ण अंग के रूप के उभरे सूचना तकनीकी-चिकित्सा संचार और प्रबन्धन के अध्ययन को व्यवस्थित करने का कार्य प्रमुख रूप से राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने किया जिसके लिए प्रमुख प्रेरक बल के रूप में ज्ञान को स्वीकार करते हुए, भारतीय मानवीय पूँजी को सामर्थ्यवान बनाने की आवश्यकता को स्वीकार किया गया। शिक्षा के निजीकरण ने जहाँ एक ओर ज्ञान की सुलभता के अवसर में वृद्धि की तो दूसरी ओर शिक्षण-प्रशिक्षण प्रविधियों, शिक्षा के क्षेत्र में तकनीक के अनुप्रयोगों कक्षाओं के स्वरूप बदलावों, सूचनाओं की असीमित उपलब्धताओं और व्यावहारिकताओं के खुलेपन को बढ़ावा भी दिया है। जिसमें सार्वजनिक शिक्षा को बहुत क्षति पहुँची है। अतः आज इक्कीसवीं शताब्दी की भारतीय शिक्षा व्यवस्था की सम्भावनाएँ जितनी सुखद और सकारात्मक है उतनी ही आज चुनौतियाँ भी हैं जिसके लिए हमें यूनेस्को द्वारा गठित डेलर्स आयोग के सन् 1996 में प्रस्तुत प्रतिवेदन—'Learning The Treasure Within' पर भी नजर डालनी होगी जिसमें तीन प्रकार की प्रमुख चुनौतियों का जिक्र किया गया है। आर्थिक संकट, प्रगति की

Scanned with CamScanner

अवधारणा का संकट व किसी-न-किसी प्रकार के नैतिक संकट की चुनौती। आज हम देखते हैं कि मानवीय संवेदनाएँ घट रही हैं लोग एक-दूसरे से दूर होते जा रहे हैं। भारत की आजादी से ठीक पहले भी भारतीय लोगों की आपस में दूरियाँ बढ़ रही थीं परिणामस्वरूप देश विभाजित हुआ। कई मनीषियों के अथक प्रयासों ने इसे कम अवश्य किया, परन्तु आज इक्कीसवीं शताब्दी में भी शिक्षित भारतीय समाज ने फिर से भाषाई-जातीय-धार्मिक-क्षेत्रीय-प्रान्तीय जैसे अनेक विभेदों में बँट रहा है। आज इस बात को भी दोहराने की आवश्यकता नहीं है कि शिक्षा के प्रचार तथा प्रसार की सार्वभौमिक आवश्यकता आज सर्वमान्य है। यह भी आधिकारिक तौर पर विश्व के सभी देश स्वीकार कर चुके हैं कि प्रत्येक देश की शिक्षा-व्यवस्था की जड़ें उसकी अपनी संस्कृति में स्थापित होनी चाहिए और उसकी प्रतिबद्धता प्रगति तथा भविष्य के लिए स्पष्ट रूप से उजागर होनी चाहिए। आज इसी सोच को सार्वभौमिक शिक्षा के रूप में सोचा जा रहा है। परन्तु इसके मार्ग में भी कुछ चुनौतियाँ सामने हैं जो निम्न प्रकार हैं–

(1) सार्वभौमिक शिक्षा के सन्दर्भ में प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के बालकों के सकल नामांकन दर में काफी विषमता है। जहाँ प्राथमिक शिक्षा के लिए यह दर 95% है उच्च शिक्षा के लिए 10·3% है वहीं माध्यमिक शिक्षा के लिए यह दर 36% है अर्थात् 60% से भी अधिक छात्र माध्यमिक स्तर पर सार्वभौमिक शिक्षा के दृष्टिकोणों से विद्यालयों में नामांकित नहीं होते हैं।

(2) कोठारी आयोग (1964–66) ने जो सुझाव दिया था। शिक्षा पर आवंटन का 2/3 विद्यालयी शिक्षा पर एवं 1/3 उच्च शिक्षा पर खर्च किया जाना चाहिए परन्तु आज शिक्षा पर आवंटित बजट प्रावधान के अनुसार सभी क्षेत्रों पर आवश्यक धनराशि खर्च नहीं की जा रही है जिससे सार्वभौमिक शिक्षा का लाभ सभी को नहीं मिल रहा है।

(3) सार्वभौमिक शिक्षा के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती आज की इक्कीसवीं सदी में व्याप्त वैश्वीकरण, उदारीकरण व निजीकरण भी है जिसके कारण आज सम्पन्न व्यक्ति अपनी आर्थिक सक्षमता के चलते महँगे व प्रसिद्ध स्कूलों में अच्छी शिक्षा प्राप्त कर लेता है परन्तु निर्धन व प्रतिभाशाली छात्र आर्थिक अभाव के कारण उच्च शिक्षा लेने से या अच्छे स्कूलों में प्रवेश से वंचित रह जाते हैं।

(4) आज शिक्षा में निहित संवैधानिक मूल्यों को जो न्याय, समता, स्वतन्त्रता पर आधारित थे अर्थात् सबकी समान शिक्षा के लिए प्रतिबद्ध थे, को तिरस्कृत किया जा रहा है व शिक्षा व्यापारीकरण का साधन बन गयी है। अर्थात् जिसकी जैसी आर्थिक हैसियत है वह वैसी ही शिक्षा खरीद रहा है। इस प्ररूप शिक्षा में निहित मानवीय व सामाजिक तत्व जैसे सामाजिक न्याय, समता व जेंडर जैसे मुद्दों का अभाव होता जा रहा है व यह निजीकरण वैश्वीकरण व उदारीकरण की प्रक्रियाएँ देश को बराबरी की तरफ नहीं ले जा रही है।

(5) शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009 ने तो रही सही कसर पूरी कर दी है। इस अधिनियम में कुछ प्रावधान ऐसे हैं जो शिक्षा में निजीकरण को खुला प्रोत्साहन देते हैं। इस अधिनियम में निजी स्कूल को 25% गरीब वंचित तबके के बच्चों को शिक्षा देने की बात कही गई है। इस प्रावधान में आने वाले समय में सरकारें नये विद्यालय खोलने के अपने दायित्व से बच जायेंगी।

(6) एक ओर शिक्षा का निजीकरण व व्यवसायीकरण सार्वभौमिक शिक्षा के मार्ग में चुनौती बना हुआ है। वहीं दूसरी ओर सरकार सबको शिक्षा देने के नाम पर संसाधनों के अभाव का रोना रोती रहती है और यही तर्क देती है जो 1835 में औपनिवेशिक सरकार देती थी, इसके पूर्व कि भारत की शिक्षा नीतियों में किसी-न-किसी रूप में यह कोशिश रहती थी कि वह देश के संविधान में निहित समता, न्याय आदि के आधार पर सार्वभौमिक शिक्षा के प्रयास करें परन्तु आज संविधान के आधार की जगह वैश्वीकरण की बाजार-आधारित नीतियों ने ली है। जिससे सार्वभौमिक शिक्षा की संकल्पना को हानि पहुँची है।

Scanned with CamScanner

(7) आज विद्यालयों का पाठ्यक्रम भी छात्रों की आवश्यकताओं व अभिरुचियों के अनुरूप नहीं जिससे छात्रों का सर्वांगीण विकास नहीं हो पाता है और सार्वभौमिक शिक्षा की संकल्पना विकसित नहीं हो पाती है।

(8) सार्वभौमिक शिक्षा की संकल्पना में शिक्षक छात्र सम्बन्ध एवं अन्तःक्रिया का समावेश होना चाहिए जिसका आज की शिक्षा प्रणाली में अभाव है।

(9) वर्तमान शिक्षा प्रणाली में प्रचलित शिक्षण अधिगम प्रक्रिया केवल स्मृति स्तर के शिक्षण तक ही सीमित है जो छात्रों के रटने पर बल देती है तथा अवबोध, परावर्तन, संश्लेषण एवं विश्लेषण का पूर्णतः अभाव दिखता है। यह भी सार्वभौमिक शिक्षा की संकल्पना को क्षति पहुँचाता है।

(10) आजादी के इतने वर्षों बाद भी हमारे देश की शिक्षा प्रणाली में विभिन्न प्रकार के पक्षपात असन्तुलन दिखाई देते हैं जैसे ग्रामीण/शहरी, धनी/निर्धन, धर्म, जाति, आदर्श, लिंग के आधार पर विभेद आदि, जिसके कारण शिक्षा की सब तक समान पहुँच व गुणवत्ता युक्त शिक्षा के अवसर सम्भ नहीं हो पाते हैं अतः यह भी सार्वभौमिक शिक्षा के समक्ष एक बड़ी चुनौती है।

(11) आज सरकार के अथक प्रयासों के बावजूद हाशिए पर खड़े लोगों स्त्री, दलित वर्ग अनुसूचित जाति व जनजाति, आदिवासी वर्ग आदि की शिक्षा के समक्ष असंख्य बाधाएँ उपस्थित होती जिससे इन्हें शिक्षा के समान अवसर नहीं मिल पाते हैं जिससे सार्वभौमिक शिक्षा की संकल्पना को आघात पहुँचता है।

(12) इसी प्रकार विशेष आवश्यकता युक्त बच्चों की आवश्यकता आधारित शिक्षा हेतु भी पर्याप्त सुविधाएँ न होने से इन्हें शिक्षा के समुचित अवसर नहीं मिल पाते हैं जिसके कारण सार्वभौमिक शिक्षा हेतु किए जा रहे प्रयास निष्फल सिद्ध होते हैं।

(13) सार्वभौमिक शिक्षा की संकल्पना तभी साकार हो सकती है जब शिक्षा प्रणाली राष्ट्रीय सांस्कृतिक परम्पराओं का संवर्द्धन करने में सक्षम हो। आज वर्तमान समय में इसका सर्वथा अभाव दिखाई देता है। अतः सार्वभौमिक शिक्षा के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती इन सांस्कृतिक विरासतों के संरक्षण व सम्वर्द्धन की भी है।

उपर्युक्त चुनौतियों के सन्दर्भ में यही कहा जा सकता है कि यदि हम भारत में सार्वभौमिक शिक्षा की संकल्पना को साकार होते देखना चाहते हैं तो पहले हमें इन चुनौतियों के समाधान ढूँढ़ने होंगे।

Scanned with CamScanner